Volume-7, No. 1 Feb.-2020, pp. Hin.47-49

श्रीमद्भागवत् में शिक्षा एवं शैक्षिक दर्शन

डा.भृगु नाथ पाण्डेय,
अतिथि प्राध्यापक
त्रिपुरा विश्वविद्यालय अगरतला भारत।

सार
श्रीमदभागवत् भारतीय वाऽमय का मुकुटमणि है, महर्षि व्यास द्वारा रचित इस महापुराण में 12 स्कन्ध है। प्रत्येक स्कन्द में कईं–कई अध्याय हैं। श्रीमद्भागवत् जीवन दर्शन अर्थात् मानवीय मूल्यों का और उस पर आधारित शिक्षादर्शन अर्थात्, शैक्षिक मूल्यों का अद्वितीय ग्रन्थ माना जाता है– शिक्षा का महत्व (मानव+समाज निर्माण), शिक्षा के उद्देश्य (मुख्य उद्देश्य+गौण उद्देश्य) पाठयक्रम का स्वरूप, शिक्षण विधि (जिज्ञासा+प्रवचन), परीक्षा प्रणाली, विद्यालय (गुरूकुल+आश्रम) एवं गुरू–शिष्य सम्बन्ध (पिता+पुत्र) इत्यादि शैक्षिक विचारों का विवरण श्रीमद्भागवत् में निहित है, जो बालक के सर्वांगीण विकास का सूत्राधार बन सकता है। वर्तमान की धूमिल होती शैक्षिक व्यवस्था में श्रीमद्भागवत् के शैक्षिक विचार एक नई रोशनी लायेगें, संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये बडे–बडे कर्म करता है, लेकिन इस जाल से निवृत्त होने के लिए उसे शिक्षा के अन्तिम उद्देश्यों की प्राप्ति करनी पड़ेगी, तथा शिक्षा ही सभी प्रकार के विकास की कुँजी हैं।

मुख्य शब्द– शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, गुरू–शिष्य सम्बंध, विद्यालय गुरूकुल व आश्रम

प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत् में निहित शैक्षिक विचारों में साध्य और साधन के रूप में, आधार ओर आधारित के रूप में दर्शन और शिक्षा के अटूट सम्बन्ध का उल्लेख किया गया और यह स्पष्ट किया गया कि दर्शन तत्त्वमीमांसात्मक, ज्ञानमीमांसात्मक, मूल्यमीमांसात्मक तथा आचारमीमांसात्मक जीवन मूल्यों का प्रतिपादन करता है। यही मानव का निर्माण करते है और शिक्षा के उद्देश्यों का आधार होते है, इन्ही के अभाव में शिक्षा के उद्देश्यों की कल्पना तक नहीं की जा सकती। शिक्षा के उद्देश्यों की सम्प्राप्ति के लिये ही अथवा बालक के सर्वांगीण विकास के लिए ही शिक्षा के पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों, गुरू शिष्य सम्बन्ध, विद्यालय, परीक्षा प्रणाली आदि शैक्षिक पक्षों का निर्धारण किया जाता है। इस दृष्टि से ही, श्रीमद्भागवत द्वारा प्रतिपादित जीवन मूल्यों का भी विवेचन किया गया है। उन मूल्यों पर आधारित विभिन्न शैक्षिक पक्षों का विवेचन किया जा रहा है। यहॉ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि श्रीमद्भागवत मूलतः दर्शन का ग्रन्थ है। वह शिक्षा का औपचारिक ग्रन्थ नहीं है। तथापि उसमें शिक्षा के अनेक पक्षों का बड़ा विस्तृत वर्णन हुआ है जो आज भी पूर्णतया प्रासंगिक है ।

शिक्षा का स्वरूप

वैदिकाकाल में भारत विश्व के गुरू के स्थान पर था। भारत के इस उच्चतम स्थान को उसकी शिक्षाव्यवस्था के कारण ही यह सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। वैदिककाल की शिक्षा का केन्द्र बिन्दु मानव था और मानव का निर्माण अथवा मानव का सर्वांगीण विकास एकमात्र उद्देश्य माना जाता था। सर्वांगीण विकास से तात्पर्य है मानव का सम्यक्, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एंवं आध्यात्मिक विकास। श्रीमद्भागवत के अनुसार भी शिक्षा का सर्वोपरि उद्देश्य मानव का निर्माण करना है जिसका विवरण इस श्लोक में मिलता है।

श्लोक

यत्सेवयाशेष गुह्यशयः स्वराड्ः विप्रप्रिस्तुष्यति काममोश्वरः।
तदेव तद्धर्म परैर्विनीतैः, सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेच्याताम्।। 4/21/39

श्लोकार्थ

प्रस्तुत श्लोक में राजा पृथु विद्वान् पुरूषों से कह रहे हैं कि– आप लोग भगवान् के लोग संग्रह रूप धर्म का पालन करने वाले हैं तथा सर्वान्तर्यामी स्वयंप्रकाश, ब्राह्मणप्रिय श्री हरि विप्रवंश की सेवा करके उनसे शिक्षा ग्रहण करने में ही सन्तुष्ट रहते

है। अतः आप सभी को सब प्रकार से विनय पूर्वक ब्राह्माणकुल से शिक्षा के स्वरूप को समझना चाहिये।

शिक्षा के उद्देश्य

प्राचीन काल में शिक्षा का पठन, पाठन, वैदिक काल से महाभारत काल तक, गुरूओं के आश्रमों में अथवा गुरूकुलों में सम्पन्न होता था। शिष्य गुरूकुलों के छात्रावासों में ही रहकर विद्याध्ययन करते थे। गुरूजनों का विशेष लक्ष्य छात्रों के सर्वागीण विकास पर ही केन्द्रित था। सर्वांगीण विकास से तात्पर्य शारीरिक विकास, चारित्रिक विकास, बौद्धिक विकास तथा आध्यात्मिक विकास से है। जब मानव का छात्रावस्था में ही सर्वांगीण विकास हो जाता है तब वह आदर्श मानव बन जाता है फिर ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करके शेष तीनों आश्रम उसके सफल हो जाते है। श्रीमद्भागवत् में यद्यपि शिक्षा के उद्देश्यों का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं मिलता है तथापि परोक्ष रूप से ही हमने उन्हे खोज लिया है जो निम्न प्रकार है–

श्लोक

कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च।
पश्येत् पाक विषर्या सं मिथुनी चारिणांनृणाम्।।
11/3/18

श्लोकार्थ

प्रस्तुत श्लोक में शिक्षा के उद्देश्य के रूप में यह बताया गया है कि स्त्री पुरूष सम्बन्ध आदि बन्धनों में बॅधे हुए संसारी मनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृति के लिये बड़े–बड़े कर्म करते रहते हैं। जो पुरूष माया के पार जाना चाहते हैं। उनको विचार करना चाहिये कि उनके कर्मों का फल किस प्रकार विपरीत हो जाता है। वे सुख के बदले दुःख पाते हैं और दुःख निवृति के स्थान पर दिनों दिन दुःख बढ़ता ही जाता है। अतः शिक्षा के अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति शिक्षा से ही सम्भव है।

पाठ्यक्रम

शिक्षा के सर्वोपरि उद्देश्य की भॉति शिक्षा का स्थायी पाठ्यक्रम वैदिक काल में हो चुका थां वैदिक काल में ऋषियों ने ज्ञान, चौदह विद्याओं और चौंसठ कलाओं में विभक्त किया था। 14 विद्याओं का विवरण उपनिषदों में कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा स्मृति ग्रन्थों में सुलभ है। 64 कलाओं का नामोल्लेख स्वयं यजुर्वेद में हुआ है। तत्कालीन शिक्षा में सिद्धियों का भी समावेश था। श्रीमद्भागवत में इन्ही विद्याओं और कलाओं का विवेचन हुआ है जो निम्न प्रकार हैं–

श्लोक– सत्यं दयातपः शौचं तितिक्षेक्षा शमोदमः ।
अहिंसा ब्रह्मचर्य च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।।
7/11/8

भाव एवं व्याख्या

प्रस्तुत श्लोंक में नारद जी युधिष्ठिर को धर्म के लक्षण बता रहे हैं– धर्म के ये तीस लक्षण शास्त्रों में कहे गये हैं– सत्य, दया, तपस्या, शौंच, तितिक्षा, उचित अनुचित का विचार, मनका संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रह्माचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी–महात्माओं की सेवा, धीरे–धीरे सांसारिक भोगों की चेष्टा से निवृत्ति, मनुष्य के अभिमानपूर्ण प्रयत्नों का फल उलटा ही होता है।
ऐसा विचार, मौन आत्मचिन्तन, प्राणियों को अन्न आदि का यथा योग्य विभाजन, उनमें और विशेषकर मनुष्यों में अपनी आत्मा तथा ईष्टदेव का भाव, सन्तों के परमाश्रम भगवान् श्री कृष्ण के नाम– गुण–लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, उनकी सेवा, पूजा ओर नमस्कार, उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्मसमर्पण– यह तीस प्रकार का आचरण सभी मनुष्यों का परम धर्म है। इसके पालन से सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं।

शिक्षण–विधि

भारतीय शिक्षाप्रणाली की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि पाश्चात्य शिक्षाविदों के प्रतिकूल भारतीय शिक्षाविद् अनेकानेक व्यायवहारिक शिक्षण विधियों के अविष्कार में प्रवृत्त नही हुए । वैदिक ऋषियों का विश्वास था कि प्रवचन विधि शिक्षण की एकमात्र सर्वोत्तम विधि है जिसमें अन्य अनेक विधियों या प्रविधियों का समावेश हो जाता है। शिक्षण की इस प्रकार की विधि स्पष्ट वैदिक काल में ही थी और आज तक प्रभावी बनी हुई है। श्रीमद्भागवत के रचयिता भगवान व्यास इसी विधि के समर्थक है। श्रीमद्भागवत् में प्रवचन विधि की महिमा ओर छटा अनेक प्रसंगों में दर्शनीय है।

प्रवचन विधि

1. श्री शुकदेव जी का राजा परीक्षित के लिए प्रवचन
2. श्री मैत्रुयती का विदुर जी को प्रवचन
3. श्री कपिलदेव जी का प्रवचन
4. श्री सनत्कुमार जी का राजा पृथु को उपदेश

गुरू–शिष्य सम्बन्ध

भारतीय शिक्षा में आदर्श गुरूशिष्य सम्बन्ध को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है। इस आदर्श गुरूशिष्य सम्बन्ध का रूप सुन्दरतम, वैदिककालीन गुरूकुलों में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। वैदिक शिक्षा में गुरू की पात्रता, शिष्य की पात्रता और प्रत्यक्ष सम्पर्क पर बड़ा बल दिया गया है। गुरू कोई ऐसा व्यक्ति नही है जो केवल पढ़ाने के लिए आता है और शिष्य उसे अमुक धन देता है और बात यहीं समाप्त हो जाती है। भारत में यह वास्तव में गोद लेने जैसा

है। गुरू–पिता से भी अधिक है और शिष्य वास्तव में उसका बच्चा है, हर प्रकार से उसका पुत्र गुरू की आज्ञा का पालन करना उसके प्रति गहरा आदर दिखाना शिष्य का प्रथम कर्तव्य है यहॉ तक कि पिता ने तो यह शरीर दिया है किन्तु गुरू ने शिष्य को मोक्ष का मार्ग दिखाया है। इस प्रकार वह पिता से बड़ा है और गुरू के प्रति यह प्रेम, यह सम्मान हम जीवन पर्यन्त रखते है। श्रीमद्भागवत के अनेक प्रसंगों में इस आदर्श गुरूशिष्य सम्बन्ध के दर्शन किये जा सकते है। इसका वर्णन इस श्लोक **में मिलता है।**

शुश्रूयोः श्रद्धानस्य वासुदेव कथारूचिः । 1/2/16
स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थत्तिषेवणात्।।

श्लोकार्थ एवं व्याख्या– प्रस्तुत श्लोक में गुरू के रूप में श्रीसूत जी अपनी शिष्यमंडली शौनकादि ऋषियों से उपदेश दे रहे है–कि पवित्र तीर्थो का सेवन करने से महत्सेवा, तदनन्तर श्रवण की इच्छा, फिर श्रद्धा, तत्पश्चात् भगवत–कथा में रूचि होती है। भगवान श्रीकृष्ण के यशक श्रवण और कीर्तन दोनों पवित्र करने वाले है। वे अपनी कथा सुनने वालों के हृदय में आकर स्थित हो जाते है और उनकी अशुभ वासनाओं को नष्ट कर देते है क्योंकि वे सन्तों के नित्य सृहृदय है।

7. विद्यालय (गुरूकुल व आश्रम)

श्रीमद्भागवत् काल में पठन–पाठन गुरूयों के आश्रमों एवं गुरूकुलों में होने का उल्लेख मिलता है। सभी शिष्य गुरूकुलों एवं आश्रमों में नियमित एवं संयमरूप से शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरूकुल एवं आश्रम जन कौलाहल से दूर प्रकृति की सुरम्य गोद में किसी नदी एवं झरने के किनारे स्थित होते थे। कुछ गुरूकुल बडे–बडे गॉवों और तीर्थस्थानों के निकट होने का विवरण श्रीमद्भागवत् में मिलता है। श्रीमद्भागवत् काल में गुरूकुल आवासीय होते थे। गुरूकुलों एवं आश्रमों का संचालन गुरूजनों के हाथ में ही होता था। गुरूकुल एवं आश्रमों के अतिरिक्त कुछ अन्य अभिकरणों – सम्मेलन एवं परिषद आदि में शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख श्रीमद्भागवत् में मिलता है।

श्लोक

अथोगुरूकुले वासमिच्छान्ता वपुजग्मतुः।
काश्यं सन्दीपनिं नाम ह्वन्ति पुरवासिनम्।।
10/45/31

भाव एवं व्याख्या

प्रस्तुत श्लोक में श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहते हैं श्रीकृष्ण और बलराम जगत के एकमात्र स्वामी हैं, सर्वज्ञ हैं। सभी विद्याऍ उन्ही से निकली हैं, फिर भी उन्होने मनुष्य की लीला करके उसे छिपा रखा था। अब वे दोनों गुरूकुल में निवास करने की इच्छा से कश्यपगोत्री सान्दीपनि मुनि के पास गये जो अवन्तीपुर (उज्जैंन) में रहते थे।

गुरूवर सन्दीपनि मुनि उनकी शुद्ध भाव से युक्त सेवा से बहुत प्रसन्न हुये तथा गुरूकुलों में शिष्य मित्रता पूर्वक अध्ययन करने का उल्लेख श्रीमद्भागवत् में मिलता है।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

01. वेद व्यास, श्रीमदभागवत्, सुधा–सागर, गीता प्रेस, गोरखपुर।
02. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजूकेशन : प्रकाशन, रामप्रसाद एण्ड सन्स हॉस्पीटल रोड, आगरा।
03. श्री अरविन्द, भारतीय संस्कृति के आधार, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी 1988
04. मुखर्जी, राधाकुमुद, एन्सिएन्ट इण्डियन एजूकेशन, मैकमिलन, लन्दन 1947
05. वेदान्तसार (भूमिका) ' सम्पाइक डॉ0 शिवसागर त्रिपाठी प्रकाशन– ज्ञान प्रकाशन, मेरठ।
06. भारतीय शिक्षा और उसकी समस्यायें: प्रकाशन, विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा।
07. वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति, चोखम्भा संस्कृति प्रतिष्ठाान, दिल्ली।
08. आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुराण–विमर्श, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1987